International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
ISSN -2393-8048, July-December 2022, Submitted in July 2022, iajesm2014@gmail.com

भारतीय संस्कृति में जाति व्यवस्था एवं भारतीय समाज

डॉ0 पूनम शर्मा, सहायक आचार्य, इतिहास, एस.के.एस. कन्या कॉलेज, सीकर।

प्रस्तावित शोध की परिचयात्मक भूमिका

भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् वर्ण–व्यवस्था का जन्म हुआ और कालान्तर में वर्ण–व्यवस्था का स्थान जाति प्रथा ने ले लिया और अनेक उप–जातिया बन गई। कालान्तर में जातियों का आधार जन्म एवं वंश परम्परा बन गया। जाति–व्यवस्था एक सामाजिक व्यवस्था है जिसमें कुछ नियन्त्रणों के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन बिताना पडता है। संस्कृत शब्द जन से जाति बना है। जन् का अर्थ जन्मदाता होता है। अतः जाति–व्यवस्था में जन्म से ही व्यक्ति को एक विशेष सामाजिक स्थिति मिल जाती है जिसको वह जन्म–पर्यनत परिवर्तित नहीं कर सकता।

पूर्व मध्यकाल में सन् 700 से 1000 ई. तक जाति–व्यवस्था में अनम्यता आ चुकी थी। जाति–बंधन इतने कठोर हो गए कि समान रहन–सहन, व्यवसाय, रीति–रिवाज और समान स्तर में ही विवाह होने लगे। एक जाति के विवाह दूसरी जाति में नहीं हो सकते थे। 18वीं शताब्दी में यह व्यवस्था कठोर से कठोरतम होती चली गई।

शेखावाटी में सीकर–बिकाणे का भू–भाग भी इस व्यवस्था से वंचित नहीं रह सका। शिक्षित वर्ग ज्यादा नहीं होने के कारण यहां भी सभी लोगों का विश्वास इस व्यवस्था में था। कुछ जातियों का स्थान उच्च होता था और उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था लेकिन निम्न व पिछडी जाति के लोगों का जीवन कष्टमय था, उन्हे सोने व चांदी के गहने पहनने तक की इजाजत नहींथी।

सामन्त वर्ग तो इतना रूढिवादी था कि यदि पिछड़ी जाति की कोई स्त्री गहना पहन लेती तो उसके गहने उतरवाकर उसका समाज में रहना मुश्किल कर दिया जाता था। अछूतो को पानी पानी के लिए सार्वजनिक कुओं पर नहीं जाने दिया जाता. जो पानी पशुओं को पिलाया जाता वही उन्हें पीने के लिए दिया जाता था।'

जाति व्यक्ति को जन्म से ही एक विशेष स्थिति प्रदान करती है जिसके अनुकूल वह अपना जीवन व्यतीत करता है तथा उसमें आजीवन कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। इसीलिये जाति व्यवस्था को समझने के लिए विभिन्न इतिहासकारों ने निम्नलिखित परिभाषाएं दी है –

1. चार्लस कूले के अनुसार – ''पूर्णतया वंशानुक्रम पर आधारित वर्ग को जाति कह सकते है।''
2. मजूमदार व मदान के अनुसार –''जाति एक बंद वर्ग है। इसका अर्थ यह है कि जाति–व्यवस्था व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग है जिसमें जन्म लेने वाला व्यक्ति न तो दूसरे वर्ग में जा सकता है और न कोई दूसरे वर्ग का व्यक्ति इसमें प्रवेश कर सकता है। अर्थात् एक जाति का सदस्य आजीवन दूसरी जाति का सदस्य नहीं बन सकता और वह उसी जाति का सदस्य रहता है।''
3. कूले के अनुसार – ''जाति एक ऐसा वर्ग है जिसकी सदस्यता जन्म से होती है तथा सता का हस्तांतरण पिता से पुत्र को होता है।''

जाति–व्यवस्था ने ही हिन्दुओं के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन को अनेक तरह से प्रभावित किया है। मुस्लिम व ईसाई समाज भी इस व्यवस्था के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। प्राचीन काल में भारत वर्ष में केवल चार वर्ण थे जो गुण, व्यवसाय, स्वभाव, संस्कृति व जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र कहलाये। इन चारो वर्णों में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था इनका मुख्य व्यवसाय यज्ञ, हवन, अध्ययन व अध्यापन, पौराहित्य, पूजा और ज्योतिष करना था।

कभी–कभी ब्राह्मण क्षत्रिय वृति व वैश्यवृति भी किया करते थे। ब्राह्मणों को संकटकाल अथवा समाज व्यवस्था भंग होने की स्थिति में सैनिक कार्य करने का निर्देश भी धर्म–शास्त्रों में मिलता है। शांति पर्व, मेघातिथि में कुछ प्रतिबंधों के साथ ब्राह्मणों को वैश्य–वृति अपनाने की भी अनुमति थी। कुछ सम्पन्न ब्राह्मण गांवों में ब्याज पर धन देने वाले महाजन के रूप में भी कार्य करते थे। ब्राह्मणों की सुप्रचलित उपाधि शर्मा थी। विष्णु पुराण के अनुसार दो वेदों के अध्येता द्विवेदी, तीन वेदों के अध्येता त्रिवेदी तथा सम्पूर्ण वेदों के अध्येता चतुर्वेदी उपाधि से विभुषित हुए।

जाति–व्यवस्था में ब्राह्मणों के बाद दूसरा स्थान क्षत्रियों का था। क्षत्रियों पर राष्ट्र और समाज की सुरक्षा का भार था। प्रजा की रक्षा, वेद पढ़ना, यज्ञ करना और सांसारिक विषयों में मनलगाना ये पाच कर्म क्षत्रियों के लिए निर्धारित थे। हिन्दु सामाजिक व्यवस्था में तीसरा स्थान वैश्य जाति का माना जाता था। स्मृतियों के अनुसार कृषि पशुपालन एवं व्यापार करना उनका प्रमुख व्यवसाय था। वैश्यों का एक बड़ा समूह औद्योगिक क्षेत्र में कार्यरत था। कुछ वैश्यों ने राज्याधिकारियो एवं सेनापतियों के रूप में कार्य किया था।

सामाजिक स्तरीकरण में चौथा स्थान शुद्रों का था। धर्मशास्त्रों के अनुसार द्विजातियों की सेवा ही शुद्ध का प्रमुख कर्तव्य था। कृषि कार्य में संलग्न शुद्ध अधिकांशत स्वतंत्र कृषक न होकर सामन्ती तथा अन्य भू–स्वामियों की भूमि पर कार्य करने वाले श्रमजीवी कृषक थे। शेखावाटी के ठिकानों की जाति–व्यवस्था की अपनी अलग ही विशेषताएं रही है।

परिचयात्मक शोध के सोपान

प्राचीन समय से चली आ रही जाति–व्यवस्था प्रत्येक स्थान पर विद्यमान थी। हिन्दुओं में ब्राह्मण जाति की उच्चता एवं श्रेष्ठता अन्य जातियों की अपेक्षा उनकी बौद्धिक उत्कृष्टता के कारण सर्वोच्च थी। ब्राह्मण समाज के उच्च वर्ग में गिने जाते थे। हिन्दुओं का कोई कार्य इनके बिना नहीं हो सकता था।

वेद पढ़ना–पढ़ाना, यज्ञ करना–कराना, दान लेना और देना ब्राह्मणों का प्रमुख काम रहा है। लेकिन वर्तमान समय में जाति में परिवर्तनों के फलस्वरूप व्यवसाय भी परम्परागत नहीं रहे। क्षत्रिय और वैश्य भी उच्च वर्ग में आते थे। सीकर ठिकाने में क्षत्रियों को राजपूत और भोमिया नाम से पुकारा जाता था जो कि क्षत्रिय के ही पर्याय शब्द है। शासन से जातीय आधार पर सम्बन्धित होने के कारण समस्त राजपूत चाहे वे राव शेखा के वंश के हो या तंवर राजपूत हो, अभिजात्य वर्ग में माने जाते रहे हैं। व्यापारिक जाति इस क्षेत्र में बनिये रहे हैं जिन्हें इस इलाके (क्षेत्र) में महाजन कहते है। समाज में अपने आपको उच्च–वर्ग में प्रति–स्थापित करने वाले ये तीनों जातियां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य समाज पर अपना प्रभूत्व स्थापित करने में सक्षम रहे है।

मध्यम वर्ग में किसान जिसमे जाट, अहीर माली तथा विशिष्ट कारीगर जैसे–सुनार, खाती तथा परम्परागत शासन से जुड़े हुए मुसलमान जिनमें पठान, कायमखानी आदि आते थे। शेष जातियां निम्नवर्गीय कही जाती रही है जो कि प्राचीन काल में शुद्र व अवर्ण कहलाती थी जिन्हें अस्यर्शय माना जाता था। इनका जातीय–व्यवस्था में कभी भी कोई स्थान नहीं रहा तथा समाज में भी इन्हें आदर का स्थान प्राप्त नहीं हुआ। ये अन्त्यज माने जाते थे और इन्हें गांव की आबादी के बाहर रहना पडता था। शहरों, कस्बों और गांवों में इनकी बसावट आर्थिक स्तर, सामाजिक सम्मान आदि मध्यम वर्गीय जातियों और उच्च वर्गीय जातियों के मुकाबले कम ही मिलता रहा है।

जाति–प्रथा के लाभ

जाति–प्रथा का विकास प्राचीनकाल में एक लाभप्रद व्यावसायिक विभाजन के रूप में हुआ था। इसके कारण सभी जातियों जाति प्रथा से निम्नांकित लाभ बताये गये हैं सदस्यों को विकास के समान अवसर प्राप्त होते रहे हैं।

1. जाति के सदस्य को अपने जन्म के साथ ही एक सामाजिक वातावरण मिल जाता है। उसे संगठन का एक ऐसा स्थायी रूप मिलता है जो कि आजीवन उसके चाल–चलन और सम्पर्कों का नियमन करता है।
2 जाति–व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक विशेष व्यवसाय को निश्चित करती है।
3. जाति व्यवस्था के द्वारा लगाये गये नियंत्रणों से व्यक्ति का जीवन नियंत्रित रहता है।
4. जाति प्रथा के कारण ही हिन्दू समाज एकता में बंधा है तथा समाज की सुरक्षा हो सकी है। जाति प्रथा का अंतिम लक्ष्य सामाजिक एकता है, सामाजिक विभाजन नहीं।
5. जाति–अवस्था के कारण ही हमारी प्राचीन संस्कृति का ज्ञान पीढ़ी–दर–पीढ़ी लगातार हस्तांतरित होता रहता है जिससे सम्पूर्ण संस्कृति को स्थायित्व प्राप्त हुआ है।
6. जाति प्रथा की अन्तर्विवाह की नीति के द्वारा तथा सगोत्र एवं सप्रवर विवाहों पर प्रतिबंध होने के कारण जाति के सदस्यों की रक्त–शुद्धता बनी रही है।

परिच्यात्मक शोध का महत्त्व

प्राचीन काल में परम्परागत सिद्धान्त के बाद समाज में जातियों के वर्गीकरण का आधार आर्थिक व व्यावसायिक ही रहा। गुण, व्यवसाय, स्वभाव के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र माने जाते थे केवल जन्म से ही नहीं। परम्परागत आधार पर निर्मित वर्गों में से आर्थिक आधार पर लोग एक वर्ग से दूसरे वर्ग के अधिक निकट आने लगे। वे समाज में अपना स्थान बनाने लगे। आपस में खान–पान में कोई रोक–टोक नहीं थी। शुद्धता का विचार अवश्य रखा जाता था। विवाह तो दूसरी जातियों में नहीं कर पाये परन्तु सामाजिक स्तर पर उनकी दूरियां कम होती गई।

(क) उच्च वर्ग – अभिजात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ग प्रतिष्ठा की दृष्टि से उच्च वर्ग में गिना जाता था। अन्य जातियों से भेदभाव व छुआ–छूत की भावना व्याप्त थी। लेकिन आर्थिक स्तर पर सभी अभिजात्य वर्ग उच्च श्रेणी में नहीं आते थे। आर्थिक दृष्टिकोण से बड़े एवं मध्यम श्रेणी के ठिकानेदार,

धनाढ़्य ब्राह्मण, धनवान व्यापारिक वर्ग, रोड़, साहूकार, मोदी, ठिकानों के वकील आदि को उच्च वर्ग में माना जाता था।

उच्च वर्ग की यही पहचान व विशेषाधिकार होता था कि वह बिना रोक–टोक के ठिकानों में, दरबार में आ–जा सकते थे तथा गढ़पति से मिल सकते थे। इस प्रकार उच्च–वर्ग का समाज में विशेष स्थान, प्रतिष्ठा व सम्मान होता था।

(ख) मध्यम वर्ग – सीकर विकाने में खान–पान, रहन सहन, रीति–रिवाज और सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से साधारण व्यक्ति और जातियाँ माध्यम वर्ग में ही गिनी जाती रही है। इस वर्ग में किसी विशिष्ट मापदण्ड के आधार पर वर्गीकृत नहीं किया गया वरन् समाज की प्रभावशाली जातियों ने ही अपने आप को मध्यम वर्ग में सम्मिलित कर लिया।

(ग) पिछड़ा वर्ग – छुआछूत राजस्थान में लम्बे समय से चली आ रही एक सामाजिक बुराई है जिसने जातियों के उत्थान में बाधा पहुंचाई है। कुछ जातियों ने अपने पैतृक धंधे को नहीं छोड़ा और वही उस जाति का प्रतीक बन गया। सामाजिक परिवेश में रह कर कुछ जातियों ने दे वे ही धंधे अपनाये जो कि उन्हें विरासत में मिले थे।

राजनीतिक आधार पर जातियाँ

(क) उच्च वर्ग – यहाँ ठिकाने में ब्राह्मणो को उच्च स्थान प्राप्त था। इनकी उच्चता व श्रेष्ठता अन्य जातियों की अपेक्षा सर्वोच्च थी। हिन्दुओं के प्रत्येक कार्य में ब्राह्मणों की उपस्थिति अनिवार्य थी। प्रत्येक शुभ कार्य में ब्राह्मण पुरोहित को बुलाया जाता था और उसे पूर्ण सम्मान दिया जाता था। ठिकानेदार भी अपनी मान–मर्यादा व योग्यता के अनुसार ब्राह्मणों को भूमि के पट्टे अर्थात् जागीर प्रदान किया करते थे। ऐसी भूमि को न्याम या देवली कहा जाता था। साधारणतः यह न्याम या देवला मन्दिर के पुजारी को दी जाती थी जिसका लगान माफ होता था।

(ख) मध्यम वर्ग – किसान जाति को ठिकानों में मध्यम वर्ग का दर्जा प्राप्त था। यह जाति शहरी को अपेक्षा अपनी भूमि के आस–पास अथवा बीच में बस्ती बसाकर रहना अधिक पसंद करती थी। ग्राम्य शासन–व्यवस्था में वह राजपूतों की अपेक्षा अधिक लोकतांत्रिक थी। कुशल काश्तकार होने के कारण पैतृक सम्पदा अथवा कृषि प्रधान उपजाऊ भूमि पर पवित्र कर्तव्य मानकर अपना अधिकार रखते थे। मध्यम वर्ग में आने वाली यह जाति भूमि के हिसाब के लिए कुआ खोदना, बैल और हल खरीदना अपना प्रमुख कर्तव्य और धर्म समझते थे।''

(ग) निम्न–वर्ग – निम्न वर्ग में ये सब जातियां आती थी जो या तो अत्यन्त निर्धन थी या अछूत थी। यहीं जातिया प्राचीन समय में शुद्र व अवर्शा कहलाती थी तथा उन्हें अस्पर्शय माना जाता था। ऐसी जातियों से किसी प्रकार का कर वगैरह वसूल नहीं किया जाता था लेकिन आवश्यकता पड़ने पर इनसे बेगार ली जाती थी। हाथ के कारीगरों से साधारणत मुफ्त काम लिया जाता था। छीपा, लीलगर, मणियार, कुम्हार तेली आदि जातियों से ठिकानेदार मनमाना काम करवाते थे।

प्रस्तावित शोध के उद्देश्य

जाति–व्यवस्था की विशेषताएँ : इतिहासकार धुरिये ने जाति–व्यवस्था की सभी विशेषताओं को दो प्रमुख भागों में विभाजित कर स्पष्ट किया है –

1. जाति–व्यवस्था की संरचनात्मक विशेषताएँ
2. जाति–व्यवस्था की संस्थात्मक विशेषताएँ

संरचनात्मक विशेषताओं से तात्पर्य उन विशेषताओं से है जो जाति के ढाँचे से सम्बन्धित है जबकि संस्थात्मक विशेषताओं में उन विशेषताओं को सम्मिलित किया है जो जाति–व्यवस्था के अनेक नियंत्रणो व नियमों से सम्बन्धित है। इस प्रकार इन दोनों प्रकार की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से संक्षेप में स्पष्ट किया जा सकता है :

1. **समाज का खण्डात्मक विभाजन** : जाति–व्यवस्था सम्पूर्ण समाज को कुछ खण्डों अथवा भागों में विभाजित करती है। प्रत्येक खण्ड के सदस्यों की स्थिति, पद तथा कार्य निश्चित रहता है।

2 **संस्तरण –** जाति–व्यवस्था की एक विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक खण्डों में ऊँच–नीच का एक सस्तरण या उतार–चढ़ाव पाया जाता है। यह संस्तरण जन्म से ही निश्चित रहता है।

3. **भोजन पर प्रतिबंध** – जाति–व्यवस्था की संस्थागत विशेषताओं में एक विशेषता भोजन पर प्रतिबंध की है। प्रत्येक जाति के लोगों द्वारा बनाया भोजन ही ग्रहण करना है। सबसे अधिक प्रतिबंध शुद्धों द्वारा बनाए गए भोजन को छूने और खाने पर है।

4. **विवाह संबंधी प्रतिबंध** – जाति–व्यवस्था की एक और विशेषता यह है कि प्रत्येक जाति के सदस्य को केवल अपनी जाति के अंदर ही विवाह करने की अनुमति है। इसी को अन्तर्विवाह का नियम कहा जाता है।

5. सामाजिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएं तथा विशेषाधिकार जाति–व्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि इसमें जो संस्तरण पाया जाता है उसी के आधार पर उच्च जातियों को अनेक सामाजिक और धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त है, जबकि निम्न जातियों की कई निर्योग्यताएँ रही हैं। ब्राह्मणों को कई विशेषाधिकार प्राप्त हैं जबकि अछूत जातियाँ अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं के शिकार है।

परिचयात्मक शोध का निष्कर्ष

जाति–व्यवस्था हिन्दु समाज की एक अनुपम संस्था रही है। विचारकों एवं विद्वानों का कहना है कि इसका प्रारम्भिक स्वरूप वर्ण–व्यवस्था के रूप में था जो कि कर्म पर आधारित था। लेकिन धीरे–धीरे इसका रूप जाति–व्यवस्था में परिवर्तित होने लगा। लेकिन पाश्चात्य–शिक्षा, औधोगिकरण, नगरीकरण, धार्मिक व राजनैतिक आंदोलन, यातायात के साधन तथा समाजवादी विचारधारा ने जाति–व्यवस्था के परम्परागत स्वरूप में तीव्र परिवर्तन किए है और इसी जाति–व्यवस्था की वर्तमान अवस्था को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर समझा जा सकता है।

1. **ब्राह्मणों की स्थिति में गिरावट जाति**–व्यवस्था में ब्राह्मणों की स्थिति सदैव से ही उच्च रही थी और आज भी ब्राह्मण जाति की स्थिति अन्य जातियों से उच्च ही है परन्तु अब सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में उनका यह महत्व नहीं रहा जो पहले था। आज जन्म ही व्यक्ति की योग्यता का आधार नहीं है वरन् प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता व कार्यकुशलता के आधार पर नवीन सामाजिक स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

2. **वैवाहिक प्रतिबंधों में परिवर्तन** – जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति के सदस्य अपनी ही जाति के अन्तर्गत विवाह करते थे। लेकिन आज औधोगिकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया में स्त्री–पुरुषों को एक साथ काम करने के अवसर प्रदान किए हैं। जिससे आज अन्तर्विवाह के स्थान पर अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम–विवाह करने की प्रवृति बढ़ी है।

3. **खान–पान के प्रतिबंधों में शिथिलता** – वर्तमान समय में खान–पान के प्रतिबंधों में भी शिथिलता आने लगी। आज ऐसे बंधन लगभग समाप्त हो गए हैं। आज यातायात के साधनों ने विभिन्न जाति, धर्म के व्यक्ति को एक साथ रहने के अवसर प्रदान किए हैं. ऐसी स्थिति में भोजन व पानी से सम्बन्धित नियंत्रणों का बना रहना किसी भी तरह से संभव नहीं है।

4. **पेशे को चुनाव में स्वतंत्रता** – वर्तमान समय की जाति–व्यवस्था में जाति के प्रत्येक सदस्य को किसी भी पेशे द्वारा जीविकोपार्जन करने की पूर्ण स्वतंत्रता है।

5. **जन्म के महत्व में कभी** – आज शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण यह विश्वास जोर पकड़ता रहा है कि जन्म से ही कोई व्यक्ति दूसरे से ऊँचा या नीचा नहीं हो सकता। आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने वाले योग्य, कुशल एवं साहसी व्यक्ति को श्रेष्ठ माना जाता है चाहे उसकी जाति कोई भी हो, चाहे उसका जन्म किसी भी परिवार में क्यों न हुआ हो।

सारांशतः स्वतंत्रता के पश्चात् जातीय भेद–भाव में अंतर आने लगा। भारतीय संविधान ने सभी जातियों को समानता का अधिकार प्रदान किया। इससे सभी जाति के लोग मनचाहा व्यवसाय कर सकते हैं। सभी जाति के बच्चों को शिक्षा मिल सकती है तथा प्रत्येक जाति का व्यक्ति पंचायत, विधान सभा, लोकसभा, नगरपालिका आदि का चुनाव लड़ सकता है। तथा नया कानून बनाकर छुआछूत को भी दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बहादुरसिंह, क्षत्रिय जाति की सूची, ग्यान सागर प्रेस, बॉम्बे
2. भटनागर, वी.एस., सवाई जयसिंह, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1972।
3. नीरज जयसिंह, विनय, राजऋषि कॉलेज, अलवर, 1969
4. रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कला एवमं इनका विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1973।
5. सोंलकी आचार्रू परमेश्वर, राजस्थान मरूप्रदेश का इतिहावृतात्मक विवेचन।
6. मिश्र आर.एल. शेखावटी कला और समाज, जयपुर 1982 ।